RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

200 महर्षि दयानन्द सरस्वती जयन्ती 1824-2024

वर्ष: 50, अंक : 12 एक प्रति : 2 रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 18 जून, 2023
विक्रमी सम्वत् 2080, सृष्टि सम्वत् 1960853124
दयानन्दाब्द : 199 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–50, अंक : 12, 15-18 जून 2023 तदनुसार 4 आषाढ़, सम्वत् 2080 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

देवों की सुमति में अपने जीवन को, शान्त, सुखी, सम्पन्न, व सन्तुष्ट बनावें

ले०-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां
देवानां रातिरभिनो निवर्तताम्।
देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम्
देवानां आयुः प्रतिरन्तु जीवसे।।

ऋग्वेद. ८.८६.२

शब्दार्थ-**देवानाम्** = देवों की, **भद्रा** = कल्याणकारी, **सुमति** = अच्छी बुद्धि, **ऋजूयताम्** = सरल व्यवहार, **देवानाम्** = देवों का, **रातिः** = दान, **नः** = हमारे पर, **अभिनिवर्तताम्** = बरसता रहे, **देवानाम्** = ऐसे देवों की, **सख्यम्** = मित्रता, **उपसेदिम्** = हम प्राप्त करें, **देवाः** = ये देव, **जीवसे** = जीने के लिए, **नः** = हमारी, **आयुः** = उम्र को, **प्रतिरन्तु** = बढ़ावे।

भावार्थ-ज्ञान की दृष्टि से संसार के मनुष्यों को दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहले ज्ञानी या देव हैं। देवों की विशेषता यह होती है कि ये मनुष्य सीधे-सरल-सच्चे-स्पष्ट व्यवहार करने वाले होते हैं, ये महानुभाव विनम्र, परोपकारी, सेवाभावी, शान्त, सन्तुष्ट, प्रसन्न होते हैं। देव कोटि के मनुष्यों की बुद्धि लोगों का भला करने वाली होती है। ये महामना केवल अपने परिवार के स्वार्थों की पूर्ति में ही नहीं लगे रहते हैं अपितु समाज-राष्ट्र के कल्याणकारी कार्यों में भी अपनी बुद्धि, बल, धन व समय को लगाते हैं।

देवों की यह भी एक विशेषता होती है कि ये महाशय निर्धन, निर्बल, निर्बुद्धि, निःसहाय लोगों को जो अभाव, अन्याय, अज्ञान से पीड़ित-प्रताड़ित होते हैं उनके दुःखों, भयों, चिन्ताओं को दूर करते हैं। निराश, रोगी, आशंकित, खिन्न, अशान्त, चंचल मन वाले मनुष्यों को अपने श्रेष्ठ विचारों-वाणी से प्रेरित करके उनके मन में बल, उत्साह, साहस, पराक्रम को भर देते हैं। अन्यों के द्वारा झूठ, छल, कपट, विश्वासघात, मिथ्या आरोप, पक्षपात से पीड़ित व्यथित व्यक्तियों में आशा और विश्वास का संचार कर देते हैं और ये हताश, किंकर्त्तव्यविमूढ़, शोकमग्न, असफल व्यक्ति पूरे उत्साह और बल के साथ अपने आधे-अधूरे कार्यों को पुनः प्रारम्भ कर देते हैं और सफल हो जाते हैं।

देवों का जीवन तो अन्यों के लिए ही होता है। उनके पास जो भी अन्न, फल, वस्त्र, धन, ज्ञान, परिचय, अनुभव, बल, सामर्थ्य होता है वे निरन्तर प्रकाश, उष्मा प्रदान करते रहते हैं। इनकी अपनी व्यक्तिगत आवश्यकतायें अति अल्प होती हैं। वे मात्र जीवित रहने के लिए ही अपेक्षित साधनों का प्रयोग करते हैं। वे भी सीमित मात्रा में और निष्काम भावना से।

दूसरी श्रेणी के मनुष्य जो अज्ञानी होते हैं उन्हें वेद शास्त्रों में असुर कहा गया है। ये असुर लोग केवल अपने अथवा अपने परिवार के सदस्यों के ही हितों की पूर्ति के लिए लगे होते हैं। इनमें परोपकार सेवा, त्याग, तपस्या, बलिदान की भावना नहीं होती है। इन असुरों में स्वार्थ की भावना इतनी अधिक होती है कि इसकी पूर्ति के लिए झूठ, छल, कपट, अन्याय, पक्षपात, कुटिलता यहाँ तक कि हिंसा का भी खुलकर प्रयोग कर लेते हैं। ऐसे इन्द्रियों के विषयभोगों की लिप्सा को शान्त करने में लगे हुए प्राणपोषण असुरों का कोई धर्म सिद्धान्त, नियम, नीति, आदर्श नहीं होता है। वे यथा अवसर कुछ भी अनिष्ट, अभद्र, अश्लील, अनैतिक कार्य करने को समुद्यत हो जाते हैं। ऐसे असुर अपने कुकृत्यों से न केवल स्वयं ही दुःखी रहते हैं अपितु परिवार समाज के लाखों-करोड़ों व्यक्तियों के सुख, शान्ति, निर्भीकता, स्वतंत्रता को भी नष्ट कर देते हैं।

वेद मन्त्र में कहा गया है कि हे परमेश्वर! हम असुरों की नहीं बल्कि सुरों, देवों की मित्रता बनायें, उनके साथ रहें, उनके साथ मिलकर उत्तम श्रेष्ठ कार्यों को करें और अपने जीवन को शान्त, सुखी, सम्पन्न, सन्तुष्ट बनावें और ऐसे उत्तम श्रेष्ठ आर्यों के साथ रहते हुए दीर्घायु को ही प्राप्त न हों बल्कि १०० से भी अधिक वर्ष की पूर्ण आयु को प्राप्त करें और स्वयं भी देवों की सन्निधि में रहते हुए देवत्व को प्राप्त कर लें। यह हमारी कामना है। हे प्रभो! आप अपनी कृपा से हमारी इस इच्छा को पूरा करें।

वेद वाणी द्वारा ही ज्ञान का प्रकाश हुआ है

ले.-शिवनारायण उपाध्याय कोटा

जब सृष्टि का आरम्भ हुआ तब मनुष्य ज्ञान शून्य था। वाणी का प्रयोग भी उसे करना नहीं आता था। वह निरा पशु के समान था। फिर ज्ञान का विकास कैसे हुआ? इस पर कुछ लोगों का कहना है कि मनुष्य ने स्वाभाविक ज्ञान से ही विकास करके वर्तमान स्थिति तक की यात्रा की है। यदि इसे सत्य मान लिया जाए तो फिर भारत के ही कुछ भागों में जैसे अंडमान, निकोबार, छत्तीसगढ़ आदि में आदिवासियों का विकास क्यों नहीं हुआ? इसी तरह अफ्रीका के कई प्रदेशों में भी नीग्रो लोग वर्तमान सभ्यता से दूरी क्यों बनाए हुए हैं। सत्य बात तो यह है कि अर्जित ज्ञान से ही व्यक्ति का विकास होता है। क्या मार्कोनी ने स्वाभाविक ज्ञान से ही बेतार का तार बना लिया था? क्या उसने हर्टज तरंगों के विषय में पढ़ कर ही बेतार का तार नहीं बनाया था? क्या आइन्स्टीन ने बिना किसी अध्ययन के ही स्वाभाविक ज्ञान से सापेक्षता का सिद्धान्त बना लिया था? वास्तव में पहले ज्ञानार्जन करना होता है उसके बाद उसका प्रचार-प्रसार और विकास किया जाता है। वैदिक ऋषियों का यह मानना है कि आदि सृष्टि में परमात्मा ने कुछ चुने हुए ऋषियों के मस्तिष्क में ज्ञान का आधान किया। उन्हें भाषा का ज्ञान भी दिया। फिर उन ऋषियों ने उसका प्रचार-प्रसार किया। जो-जो जातियां उनके सम्पर्क आती गई वे ज्ञान पाने में सफल रही। उन्होंने ही फिर उस ज्ञान का प्रचार-प्रसार और विकास किया। जो मनुष्य जाति उनके सम्पर्क में नहीं आई वह आज भी अज्ञान अंधकार में निमग्न है। वेद में इस विषय पर पर्याप्त चर्चा हुई है। हम इस लेख में ऋग्वेद के आधार पर इस विषय पर अपने विचार व्यक्त कर रहे हैं।

ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 71 के मंत्र-1 में कहा गया है-

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदे षांनिहितम् गुहाविः।।

अर्थ-(हे बृहस्पते) हे बड़ी वाणी के स्वामी (नामधेयं दधानाः) वस्तुओं के नामों को धारण करते हुए ऋषि (यत्) जो (प्रथमम् वाचः) प्रथम वाणियों को (अग्रे) आगे सृष्टि के आदि में (प्रेरत) प्रेरणा करते हैं। (यत्) वा (एषाम्) इनका (श्रेष्ठम्) उत्तम (अरिप्रम्) पाप रहित वचन (आसीत्) था वह (गुहा निहितम्) गढ़बुद्धि में रखा था। (तत्) वह (एषाम्) इनके (प्रेणा) प्रेम से (आविः) प्रकट हुआ।

भावार्थ-आदि सृष्टि में परमात्मा ने निष्पाप ऋषियों की बुद्धि में वेदवाणियां प्रेरित की। वेद के शब्दों से ही ऋषियों ने जगत् के पदार्थों के नाम रखे और प्रेम से उस वाणी का प्रचार अन्य मनुष्यों में किया। वह वेद की आदि वाणी श्रेष्ठ और निर्दोष थी। आधुनिक भाषा विज्ञानिकों का मानना है कि आदि सृष्टि में मनुष्य ने जड़ वस्तुओं द्वारा होने वाले शब्दों से वाणी सीखी, फिर धीरे-धीरे वाणी का विकास हुआ। परन्तु जड़ वस्तुओं में अक्षरमय शब्द नहीं होते हैं। अक्षरमयी वाणी मनुष्य ने कैसे सीखी इसका संतोष जनक उत्तर उनके पास नहीं है।

आदि सृष्टि में फिर वेद वाणी का प्रचार-प्रसार द्वारा हुआ बलात् नहीं।

सूक्त की दूसरी ऋचा में इसी पर विचार किया गया है।

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि।।

ऋ. 10.71.2

अर्थ-(तितउना) छलनी से (सक्तुम् इव) सत्तुओं को जैसे (मनसा) विचार से (वाचम् पुनन्तः) वाणी को पवित्र करते हुए (धीराः) बुद्धिमान् (मनसा) मन से (यत्र) जहां जिस काल में (वाचम् अक्रत्) वाणी में काव्य रचना करते हैं। (अत्र) यहां इस समय (सखायः) उनके समज्ञानी मित्र (सख्यानि) मित्र भावों को (आ जानते) जान लेते हैं। एषाम् अधिवाचि) इसकी साधिकार वाणी में (भद्रालक्ष्मीः) कल्याणमयी शोभा (निहिता) रहती है।

भावार्थ-वेद वाणी का प्रचार विचार द्वारा हुआ, बलात् नहीं हुआ है। वेदवाणी में सभी के लिए मित्रता का भाव है। चूंकि वेद वाणी में सभी के लिए प्रेम और हित की बात है इसलिए लोगों ने ग्रहण कर लिया। इस वाणी में सभी के लिए कल्याण और ऐश्वर्य है।

वेद वाणी सात छन्दों में है। इसे ऋषियों ने लोगों को सिखाया। फिर ऋषियों से सीखकर इसका प्रचार किया गया।

यज्ञेन वाचाः पदवीयमायन्ता-मन्वविन्दि न्नृषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरूत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते।।

ऋ. 10.71.3

अर्थ-ज्ञानी लोगों ने (यज्ञेन) परस्पर संगति से विचार से (वाचः पदवीयम्) वाणी के पदार्थ को (आयत्) प्राप्त किया। (ऋषिषु प्रविष्टाम्) जो वाणी ईश्वर द्वारा ऋषियों में प्रविष्ट हुई थी उसे (अन्वविन्दन्) जान लिया और प्राप्त कर लिया। (ताम् आभृत्य) उसे धारण करके (पुरूत्रा) बहुत प्रकार से (व्यदधुः) अन्यों के धारण कराया (ताम्) उस वाणी को (सप्तरेभाः) सात छन्द (अभि संनवन्ते) भली-भांति प्रकट करते हैं।

भावार्थ-ज्ञानी लोगों ने परस्पर संगति से, विचार से वाणी के पदार्थ को प्राप्त किया। यह वाणी ईश्वर द्वारा ऋषियों को प्रदान की गई थी। उसे लोगों ने जान लिया, प्राप्त कर लिया। उस वेद वाणी को धारण करके बहुत प्रकार से अन्यों को धारण कराया। वेदवाणी सात छन्दों में प्रकट हुई है। जो लोग वाणी को ठीक से समझ लेते हैं उन्हें उसमें वाणी का रस प्राप्त होता है। इस विचारधारा पर वेद का कथन है-

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृणवन्न शृणोत्येनाम्।
उतो त्वस्मै तन्वं वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः।।

ऋ. 10.71.4

अर्थ-(उत त्वः) और भी है कि (वाचम् पश्यन् न ददर्श) वाणी को जानते हुए भी नहीं जानते (उत त्वः) और (शृण्वन्) सुनता हुआ भी (एनाम् न श्रृणोति) इसको नहीं सुनते हैं अनेक लोग पढ़-लिख कर भी मूर्ख बने रहते हैं (उतः तु) और (अस्मै) बुद्धिमान के लिए (तन्वं विसस्रे) शरीर खोल देती है (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों वाली (उशती) कामना करती हुई (जाया) पत्नी (पत्ये इव) जैसे पति के लिए।

भावार्थ-कुछ लोग पढ़-लिखकर भी वाणी के मर्म को नहीं जान पाते हैं। वेद वाणी को सुनते हुए समझ नहीं पाते हैं। परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति के लिए वाणी अपने रहस्य को इस प्रकार प्रकट कर देती है जैसे कि सुन्दर वस्त्रों को धारण की हुई नारी अपने पति के लिए वस्त्रों को खोल देती है।

ज्ञान को ठीक से समझ कर काम में परिणत करना चाहिए।

उत त्वै सख्ये स्थिर पीतमाहुर्नैनं हित्वन्त्यपि वाजिनेषु।
अन्धेवा चरति मायया एष वाचं शुश्रुवां अफलामपुष्पाम्।।

ऋ. 10.71.5

अर्थ-(उत त्वं) और (सख्ये) मित्रता में (एनम् स्थिर पीतम्) इस जन को जिसने वाणी को समझा है स्थिर ज्ञान रखने वाला कहते हैं। (वाजिनेषु) ज्ञानों में, यज्ञों में (अपि) भी (एनम् न हिन्वन्ति) अन्य जन उसको नहीं पाते हैं, उसकी बराबरी नहीं कर सकते हैं। (एषः) वह मनुष्य (मायया) माया से धोखे में (अधेन्वा चरति) बिना दूध वाली गाय के साथ (चरति) विचर रहा है। जिसने (अफलाम् अपुष्पापम्) बिना फल-फूल की अर्थात् न तो समझी और न काम में लाई (वाचम्) वाणी को (शुश्रुवान्) सुना।

भावार्थ-जिसने वेद वाणी को ठीक प्रकार से समझ लिया है उसे स्थिर ज्ञानी कहते हैं। ज्ञान में, अथवा यज्ञ में दूसरे व्यक्ति उसके समान नहीं हो सकते हैं। अज्ञानी पुरूष न वेद वाणी को समझ पाया है और न ही उसे अपने आचरण में स्थान दे सका है।

अगली ऋचा में कहा गया है कि सभी व्यक्ति एक समान विद्वान् नहीं होते हैं। सब मनुष्यों को बराबर मानना मूर्खता है।

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोज वेष्वसमा बभूवुः।
आदघ्नास उप कक्षास उत्वे हृदाइव स्नात्वां उ त्वे ददृश्रे।।

ऋ. 10.71.7

अर्थ-(अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखाया) आंखों वाले और कानों वाले मित्र, सामान इन्द्रियों वाले (मनोजवेषु) मन की गतियों में, विचार शक्ति में

(शेष पृष्ठ 6 पर)

सम्पादकीय

करो योग, रहो निरोग

महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि योग के आठ अंग बताए है। क्रमशः एक-एक सीढ़ी चढ़ने से ही सिद्धि को प्राप्त किया जा सकता है। योग का मुख्य उद्देश्य चित्त की एकाग्रता द्वारा आत्मिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का विकास करना और आत्म साक्षात् द्वारा परम आत्मा तक पहुंचना है। किन्तु जो मन, बुद्धि तथा आत्मा का निवास स्थान है, जो भगवान् का साक्षात् मन्दिर है, वह हमारा शरीर यदि बलवान और स्वस्थ नहीं है तो न ही हम अपनी शक्तियों का विकास कर सकते हैं, और न ही परम आत्मा परमेश्वर का दर्शन। वेद में भक्त भगवान से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो! हम सुदृढ़ अंगों वाले तेरी स्तुति करने वाले हों। उपनिषदों में भी शारीरिक बल के बिना आत्म दर्शन को असम्भव बताया है-**नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः** अर्थात् यह आत्मा बलहीन कमजोर मनुष्य को प्राप्त नहीं होता। अतः योग जहां आत्मिक, मानसिक तथा बौद्धिक उन्नति का उपाय बताता है, वहाँ शारीरिक उन्नति का भी सर्वोत्तम तथा अचूक उपाय हमारे सामने रखता है। मनुष्य जीवन का एक ही उद्देश्य है कि अपने को सुखमय तथा शक्ति सम्पन्न बनाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति भी तभी हो सकती है जबकि हमारे शरीर निरोग तथा सबल हों। जो शरीर सम्पूर्ण विद्याओं तथा शुभ गुणों का आधार है, जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति का मूल कारण है, उस शरीर की सदा अजर अर्थात् युवावस्था और अमर अर्थात् चिरायु अवस्था से अधिक प्रिय वस्तु संसार में मनुष्यों के लिए और क्या होगी?

आज परमात्मा की इस अमूल्य देन की दयनीय दशा को देखकर बहुत दुःख होता है। आज सभ्य संसार इस शरीर की अनेक प्रकार की आधि-व्याधियों से पीड़ित हो रहा है। सम्भवतः कोई ऐसा सौभाग्यशाली पुरूष होगा कि जिसको किसी न किसी प्रकार की बीमारी ने न घेर रखा हो। इसलिए आज हमारे शरीरों में तथा मनों में न बल है, न उत्साह, न पवित्रता है और न प्रसन्नता। जीवन की छोटी से छोटी घटनाएं तथा परिस्थितियां भी हमारे निर्बल तथा निस्तेज शरीर तथा मन को विक्षुब्ध तथा अशान्त बना देती हैं। हमारे स्वाभाविक आनन्द को भी नष्ट कर हमें शोक सागर में डुबो देती है। इन सब रोग और व्याधियों का मुख्य कारण हमारी शारीरिक तथा मानसिक निर्बलता और अस्वस्थता ही है और उसमें भी विशेषकर शारीरिक निर्बलता। जिस मनुष्य का शरीर स्वस्थ और बलवान नहीं, वह कभी भी मानसिक चिन्ताओं तथा शारीरिक व्याधियों से मुक्त नहीं हो सकता। उसके पास संसारिक सुख भोग की सामग्री होते हुए भी न तो वह उसे स्वेच्छापूर्वक भोग सकता है और न ही उसके द्वारा सुख और शान्ति को प्राप्त कर सकता है। उसे कोई न कोई मानसिक चिन्ता या शारीरिक बीमारी अवश्य घेरे रहती है। कमजोर शरीर वाले के मन में किसी भी कार्य को करने के सारे लक्षण विद्यमान हों। महर्षि चरक अपने ग्रन्थ में सुखी जीवन के लक्षण बताते हुए लिखते हैं कि जिस मनुष्य को शारीरिक व मानसिक रोग नहीं सताते, जो विशेषकर यौवनावस्था में सब प्रकार के शारीरिक व मानसिक विकारों से रहित है, जिसका बल, वीर्य, यश, पौरूष और पराक्रम सामर्थ्य तथा इच्छा के अनुरूप है, जिसका शरीर नाना प्रकार की विद्याओं, कला कौशल आदि विज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ है, जिसकी इन्द्रियां स्वस्थ, बलवान् और इन्द्रियजन्य भोगों को भोगने में समर्थ है, जिसके शरीर में किसी प्रकार की निर्बलता नहीं, उसका जीवन वास्तव में सुखी जीवन है। अतः जिसके शरीर में उपयुक्त गुण विद्यमान नहीं हैं, वह कभी सुखी जीवन नहीं कहला सकता। ऐसे नीरस तथा उत्साहहीन जीवन से न तो इहलोक ही सुधर सकता है और न ही परलोक। अतः इस लोक और परलोक को शांत तथा सुखमय बनाने का यदि कोई मुख्य साधन है तो वह है शारीरिक आरोग्यता। इसीलिए शरीर शास्त्र के आचार्यों ने कहा है कि धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष जो मानव जीवनरूपी कल्पवृक्ष के चार मधुर फल हैं, उनका यदि कोई श्रेष्ठ तथा मुख्य साधन है तो वह शारीरिक आरोग्यता ही है, क्योंकि यदि हमारा शरीर स्वस्थ और बलवान है तो हम अपने पुरूषार्थ से धन भी कमा सकते हैं, उस धन द्वारा संसारिक सुखों का उपभोग भी कर सकते हैं और परोपकार देश, जाति तथा धर्म की सेवा तथा आत्मचिन्तन और प्रभुभक्ति आदि शुभ कार्य भी हमेशा कर सकते हैं। इसीलिए महापुरूषों ने कहा है कि अपने जीवन को धार्मिक तथा सुखमय बनाने का सबसे प्रथम और मुख्य साधन स्वस्थ तथा बलवान् शरीर ही है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने शरीर स्वास्थ्य पर बहुत बल दिया है। महर्षि चरक तो यहाँ तक लिखते हैं कि मनुष्य को अन्य सब काम छोड़कर पहले अपने शरीर की सम्भाल करनी चाहिए क्योंकि अन्य सब धन, सम्पत्ति आदि पदार्थों तथा सुख साधनों के होने पर भी शरीर स्वास्थ्य के बिना वह सब नहीं के समान हैं। इसलिए वेद में मनुष्य को आदेश दिया है कि हे मनुष्य! तू अपने शरीररूपी क्षेत्र में रोग रहित होकर रह। संसार में जितने भी महापुरूष हुए हैं, उन्होंने भी शारीरिक बल पर विशेष जोर दिया है। आधुनिक युग के महापुरूष महर्षि दयानन्द युवकों को शारीरिक उन्नति का उपदेश देते हुए कहते हैं कि बलवान मनुष्य सदा सुखी और प्रसन्न रहता है। निर्बल मनुष्य का जीवन सार रहित, रोगों का घर बना रहता है। अतः अपने शरीर को बलवान् बनाने के लिए खान-पान के समान व्यायाम भी अवश्य करना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति सदा सुख आनन्द का अभिलाषी रहता है। लोक में रहते हुए अनेक रूपों तथा अवस्थाओं में सुख का अनुभव होता है, किन्तु संसारिक साधनों से प्राप्त सुख में कहीं न कहीं दुख का मिश्रण बना रहता है। संसारिक साधनों के द्वारा स्थायी सुख को प्राप्त नहीं किया जा सकता। भौतिक पदार्थ नाशवान हैं। नष्ट होने वाले पदार्थों से हम शाश्वत और चिरस्थायी सुख की कामना नहीं कर सकते। अगर कामना करते हैं तो यह हमारा अज्ञान है। भौतिक साधनों के द्वारा प्राप्त होने वाले सुख को आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा चिरस्थायी बनाया जा सकता है। शरीर से सम्बन्धित होने के कारण उस सुख में स्थायित्व और निरन्तरता नहीं रहती। एक दुःख के छूट जाने पर दूसरे दुःख घेर लेते हैं और यही क्रम जीवन भर चलता रहता है। योग के द्वारा व्यक्ति को अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य का ज्ञान होता है। देश के बहुत सारे लोगों ने मुक्तकंठ से योग की महत्ता को स्वीकार किया है। योग किसी मत, मजहब और सम्प्रदाय से सम्बन्धित नहीं है। योग का उद्देश्य स्वस्थ और सुन्दर जीवन शैली का निर्माण करना है। जिसमें व्यक्ति तनावमुक्त होकर जीवन का आनन्द उठा सके। संसारिक सुखों को उपभोग करता हुआ मनुष्य शान्ति तथा आनन्द को प्राप्त करे। योग के द्वारा ही व्यक्ति इस प्रकार का तनावमुक्त जीवन जी सकता है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि इसी योग की पद्धति के द्वारा दीर्घायु जीवन व्यतीत करते थे।

हर वर्ष 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है। योग को विश्व में एक नई पहचान मिल रही है। परन्तु योग कोई एक दिन विशेष की वस्तु नहीं है। योग हमारी प्रतिदिन की जीवनचर्या का हिस्सा है। जैसे हम प्रतिदिन भोजन करते है, खाते हैं, पीते हैं। उसी प्रकार योग भी नियमित किया जाने वाला कर्म है जिससे ऋषि दीर्घायु को प्राप्त करते थे। योग करने से मानसिक तनाव कम होगा, शरीर निरोग होगा तथा मन में एक नई ऊर्जा का संचार होगा। इसीलिए हम सभी अगर स्वस्थ, मानसिक तनाव से रहित, निरोग और दीर्घायु जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हमें ऋषियों की पद्धति को अपनाना पड़ेगा। योग की पद्धति को अपनाकर ही एक स्वस्थ और सुन्दर राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। अतः आओ निरोग होकर अपने राष्ट्र को फिर विश्व गुरु बनाने की ओर एक कदम और बढें और बढाएं।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

ज्ञानातिरिक्तवस्तुसदसद्विवेचनम्

ले.-श्री डा० मंगलदेव शास्त्री एम.ए.

(गतांक से आगे)

'व्याहतत्वादहेतुः।४।२।२७।। जब ज्ञान से अतिरिक्त कोई अर्थ ही तुम नहीं मानते तो फिर बुद्धि के द्वारा पदार्थों का विवेचन करने पर पदार्थविषयक प्रतीति मिथ्या सिद्ध होती है, ऐसा कहना परस्पर विरुद्ध है। यदि बुद्धि से पदार्थों का विवेचन करते हैं तो इसमें तीन वस्तुऐं आती हैं-एक विवेचन करने वाला (कर्त्ता), दूसरी जिस बुद्धि से विवेचन करता है वह (कारण) और तीसरी विवेचन क्रिया। जब तुम्हारे कहने से ही तीन वस्तुएँ सिद्ध होती हैं तो फिर जब कोई पदार्थ ही नहीं है तो विवेचन किसका और यदि बुद्धि से विवेचन करते हो तो सर्वपदार्थों का अभाव न हुआ। और जो तन्तुओं से अलग कपड़ा कोई नहीं ऐसा कहते हो तो इसका उत्तर है **'तदाश्रयत्वाद-पृथग्ग्रहणम्'**४।२।२८।।उत्पन्न हुआ द्रव्य जिन कारण द्रव्यों से मिलकर बनता है उन कारण द्रव्यों के आश्रय में ही उसकी उपलब्धि होती है, अर्थात् वह कार्य द्रव्य कारण द्रव्य के आश्रित ही रह सकता है पृथक् नहीं। और जिन पदार्थों में आश्रय और आश्रित भाव नहीं होता उनका पृथक् ग्रहण होता है, जैसे घट और पट में आश्रय और आश्रित भाव नहीं है। इनका पृथक् पृथक् ग्रहण होता है। अतीन्द्रिय परमाणुओं के अतीन्द्रिय होने से उनका तो प्रत्यक्ष होना सम्भव नहीं। उनसे उत्पन्न जो यह जगत्, इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किया जाता है वही तो इस बुद्धि के द्वारा जाना जाता है, जो परमाणुओं से भिन्न पदार्थ है। और भी-

'प्रमाणतश्चार्थप्रतिपत्तेः'।न्या० द० ४।२।२९।। अर्थ का यथार्थज्ञान प्रमाणों से होता है। बुद्धि से पदार्थों का ज्ञान होने से पदार्थों की सत्ता सिद्ध है। जो पदार्थ है और जैसा है, और जो नहीं है और जिस प्रकार से नहीं है, यह सब प्रमाणों से ही जाना जाता है। जैसे वस्त्र है, पहनते हैं, उसके द्वारा शरीर की शीतातप से रक्षा होती है-यह सब प्रत्यक्ष प्रमाण से जाना जाता है। जैसे वन्ध्या के पुत्र नहीं, खरगोश के सींग नहीं, इन सबका न होना भी प्रमाणों से ही जाना जाता है। और जो प्रमाणों से ज्ञान प्राप्त किया जाता है, इसी को पदार्थों का विवेचन कहते हैं। इस विवेचन से सर्व शास्त्र, सर्वकार्य और देहधारियों के सभी व्यवहार सम्बन्धित हैं। परीक्षा करने पर ही बुद्धि से निश्चय होता है-अमुक वस्तु है, अमुक नहीं है। इस प्रकार सर्व जगत् और जगत् के पदार्थ नहीं हैं, वह सिद्ध नहीं होता। यदि सर्व नास्ति इसमें प्रमाण है तो आपने प्रमाण की सत्ता स्वीकार कर ली और इस प्रकार आपकी 'सर्वं नास्ति' यह बात कट गई और यदि प्रमाण नहीं है तो 'सर्व नास्ति' इसकी सिद्ध कैसे हुई। यदि कही कि बिना प्रमाण के ही 'सर्वं नास्ति' की सिद्धि है, तो 'सर्वमस्ति' की सिद्धि भी क्यों नहीं हो सकती?

प्रश्न यदि कहो कि जैसे स्वप्न में पदार्थ नहीं होते और पदार्थों के होने का अभिमान होता है, वैसे ही न प्रमाण हैं और न प्रमाणों से जानने योग्य कुछ है; किन्तु प्रमाणों और प्रमेयों का मिथ्याज्ञान होता है, जैसे मृगतृष्णा में जल प्रतीत होता है किन्तु जल नहीं होता। ऐसे यह सब संसार भ्रममात्र है।

उत्तर-**'हेत्वभावादसिद्धिः** न्या० द० ४।२।३३।। स्वप्नावस्था में जैसे वस्तु के न होने पर भी वस्तु की प्रतीति होती है, वैसे ही यह प्रमाण और प्रमेय भी मिथ्या हैं अर्थात् नहीं हैं। यह तो स्वप्न का आपने दृष्टान्त मात्र दिया है हेतु कोई नहीं दिया। बिना हेतु के दृष्टान्त मात्र साधक नहीं होता। यदि दृष्टान्त मात्र से सिद्धि होती है तो यह भी दृष्टान्त दिया जा सकता है कि जैसे जाग्रदवस्था में पदार्थों की प्रतीति होती है और वे पदार्थ भी होते हैं ऐसे ही प्रमाण और प्रमेय भी सत्य हैं। और जो यह कहा कि स्वप्नावस्था में पदार्थ न होने पर प्रतीत होते हैं इसमें भी कोई हेतु नहीं दिया। यदि यह कहो कि जागने पर स्वप्न के पदार्थ उपलब्ध नहीं होते, तो जो पदार्थ जागने पर उपलब्ध न होने से नहीं होते-अर्थात् जो पदार्थ उपलब्ध होते है उनकी सत्ता सिद्ध होती है। तभी तुम उपलब्ध न होने से स्वप्न के पदार्थों का निषेध कर सकते हो। अन्यथा उपलब्ध होने और अनुपलब्ध होने पर अर्थात् दोनों अवस्थाओं में पदार्थों का अभाव मानेंगे तो जागने पर स्वप्न के पदार्थ उपलब्ध न होने से नहीं यह व्यर्थ हो जाएगा, क्योंकि उपलब्धि और अनुपलब्धि तुम्हारे पक्ष में दोनों समान हैं, अतः अनुपलब्धि में पदार्थ की अभावसाधकता न बनेगी।

स्मृतिसंकल्पवच्चा स्वप्नविषयाभिमानः-जैसे मनुष्य पूर्वानुभूत वस्तु का स्मरण और संकल्प करता है तो जैसे स्मरण होने से या संकल्प से पूर्वानुभूत पदार्थों का अभाव सिद्ध नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार स्वप्न भी जाग्रदवस्था में अनुभूत पदार्थों का ही होता है। कभी जन्मान्ध को रूपस्मरण या रूप का स्वप्न नहीं होता। इसलिए स्वप्न के दृष्टान्त से भी सर्वपदार्थों का अभाव सिद्ध नहीं होता। और जो स्वप्नावस्था और जाग्रदवस्था दोनों में ही प्रतीत पदार्थों का अभाव मानता है तो उसका यह कहना कि **'स्वप्नविषयाभिमानवत्-अयं प्रमाणप्रमेयाभिमानः'** स्वप्न की तरह यह प्रमाण और प्रमेय ज्ञान मिथ्या ज्ञान है-यह अनर्थक है; क्योंकि वह ज्ञान के अतिरिक्त अन्य पदार्थ मानता ही नहीं है तो यह जाग्रदवस्था है, यह स्वप्नावस्था है, यह भेद ही नहीं बनता; क्योंकि जिस अवस्था में अर्थ है वह जाग्रत अवस्था और जिसमें ज्ञानमात्र के अर्थ नहीं, वह स्वप्नावस्था। जब भेद ही सिद्ध नहीं कर सकता तो स्वप्नावस्था के दृष्टान्त से जाग्रदवस्था के पदार्थों का भी अभाव कैसे सिद्ध कर सकता है? स्वप्नज्ञान मिथ्या क्यों कहा जाता है? जैसे एक मजदूर जब सो गया और वह स्वप्न देखता है कि मैं भारत का राष्ट्रपति बन गया। किन्तु जागने पर अपने को सेठ जी की भैंसों के लिये घास खोदने के स्थान पर उद्यत पाता है-तब कहता है स्वप्नविषयाभिमान झूठा था। अन्यार्थ में अन्यार्थ का ज्ञान ही तो मिथ्याज्ञान है। जैसे रात्रि के समय में लकड़ी में पुरुष का ज्ञान होता है। यदि पुरुष की सत्ता कहीं भी न हो तो लकड़ी में पुरुषज्ञान किसी प्रकार संभव नहीं हो सकता, इसी प्रकार जाग्रदवस्था में पदार्थों का ज्ञान होने से ही वहाँ रात्रि के कारण अन्य में अन्य का मिथ्या ज्ञान हुआ। यहाँ स्वप्नावस्था के कारण अन्य में अन्य का मिथ्या ज्ञान हुआ। सो यह मिथ्या ज्ञान तत्त्व ज्ञान से नष्ट हो जाता है। जैसे दिन में लकड़ी में जो पुरुषज्ञान था, वह नष्ट हो जाता है; किन्तु लकड़ी और पुरुष रूप पदार्थों का अभाव नहीं होता। इसी प्रकार दूसरे से सूर्य की किरणों के जब भौम ऊष्मा के साथ मिलने पर हिलती हुई किरणों में जल ज्ञान जो मिथ्या ज्ञान सामान्य के ग्रहण से उत्पन्न होता है। सूर्य की किरणों और जल का सामान्य धर्म जो शुल्क रूप है उसी से किरण में दूर से भ्रम उत्पन्न होता है और समीप में जाने से वह मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाता है। भूमि की ऊष्मा के साथ मिली हुई किरणें नष्ट नहीं होतीं। इसी प्रकार सोकर उठने वाले का भी मिथ्या ज्ञान जागने पर तत्त्वज्ञान से नष्ट हो जाता है। यदि सब पदार्थों का अभाव ही हो तो न मिथ्या ज्ञान ही हो सकता है और जब कोई तत्त्वपदार्थ भी न हो तो तत्त्वज्ञान कैसा। और कहीं पर किसी समय किसी को (अर्थात् सर्वत्र, सर्वदा, सर्वेषाम् न भवति) होने से मिथ्याज्ञान भी जहाँ पर जिस प्रकार जिसको निमित्त प्राप्त होने पर ही होता है। जैसे बाह्य पदार्थों का अभाव सिद्ध नहीं होता, इसी प्रकार मिथ्या बुद्धि का भी अभाव नहीं, क्योंकि मिथ्याबुद्धि का निमित्त उपलब्ध होता है और मिथ्याबुद्धि की सत्ता भी उपलब्ध होती है। **'तत्त्वप्रधानभेदाच्च मिथ्या-बुद्धेर्द्वैविध्योपपत्तिः।** न्या० द० ४।२।३७।। जिस पदार्थ में मिथ्या ज्ञान होता है, वह तत्त्व और जिस विषय का ज्ञान होता है वह प्रधान, तत्त्व और प्रधान के भिन्न भिन्न होने से दोनों का जो समान धर्म उसके ग्रहण होने से उनका जो वैधर्म्य उसके ग्रहण न होने से मिथ्याबुद्धि उत्पन्न होती है। जिस पदार्थों में सादृश्य नहीं होता, उनमें अन्य का अन्य में मिथ्याज्ञान भी नहीं होता है। जैसे काक में बैलविषयक मिथ्याज्ञान किसी को भी नहीं होता सादृश्य के ग्रहण न होने से। इसलिये सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, जल, तेज आदि में सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, जल तेज आदि बुद्धि मिथ्याज्ञान नहीं; किन्तु तत्त्वज्ञान है; क्योंकि तत्त्व और प्रधान के सामान्य ग्रहण के अभाव से यह तत्त्वबुद्धि ही है, इसलिये प्रमाण प्रमेयादि मिथ्याबुद्धि हैं, ऐसा मानना सर्वथा अयुक्त है।

उपर्युक्त प्रमाणों से जब विज्ञान के अतिरिक्त अन्य पदार्थों की सत्ता सिद्ध है, इसलिये जिस पदार्थ के साथ चित्त का सम्बन्ध होता है, वह पदार्थ ज्ञात होता है और जिस पदार्थ के साथ चित्त का सम्बन्ध नहीं होता वह अज्ञात होता है। इसी को व्यास जी लिखते हैं-**'वस्तुनो ज्ञाताज्ञातस्वरूपत्वात् परिणामि चित्तम्'** अर्थात् जिस वस्तु के आकार का चित्तवृत्तिरूप परिणाम हो गया, वह ज्ञात और शेष अज्ञात। किन्तु

(शेष पृष्ठ 7 पर)

स्वाधीनता की सुरक्षा के उपाय

ले.-नरेन्द्र आहूजा

सर्वप्रथम हमें स्वाधीनता, स्वतंत्रता का अर्थ समझना होगा। स्वाधीन अर्थात् अपने स्वयं के आधीन होना अपने लिये अपने द्वारा बनाये गए एक तंत्र अर्थात् संविधान के प्रति निष्ठा की सौगंध खाकर उसके प्रति पूर्ण आस्था रखना और उन संवैधानिक सीमाओं की मर्यादाओं का पालन करना। परन्तु शायद हमने स्वाधीनता का पर्यायवाची शब्द आजादी समझ लिया और भूल गए कि गुलामी के दूसरों की दासता के बंधन तोड़कर हमने अपने को अपने बनाये नियमों कानूनों के दायरे में रहने की कसम खायी थी। स्वतंत्रता प्राप्त करना जितना कठिन और दुष्कर था आज उसे बनाए रखना शायद उससे भी ज्यादा कठिन और दुष्कर है पर इस गुरुतर कार्य को अपने कंधों पर लेना होगा। स्वाधीनता के लिये शहीदों द्वारा दिये गए असंख्य बलिदानों को मनन करते हुए उस स्वाधीनता की सुरक्षा की सौगंध उठानी होगी अन्यथा स्वतंत्रता दिवस के आयोजनों का कोई प्रयोजन नहीं रह जायेगा और यह आयोजन एक औपचारिकता बनकर रह जायेंगे। निश्चित मानिये आने वाली पीढ़ियाँ हमसे स्वतंत्रता की सुरक्षा न कर पाने का प्रश्न पूछेंगी, देश की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाले शहीदों की यादें हमसे पूछेंगी क्या इसी दिन के लिये हमने अपने जीवन की आहुति स्वतंत्रता संग्राम के यज्ञ में दी थी। शायद तब हम अगर अभी नहीं चेते तो सिर झुकाये हारे हुए जुआरी पांडवों की तरह द्रौपदी के चीरहरण, अपनी मातृभूमि के साथ खिलवाड़ के दृश्य देखने को विवश हो जायेंगे।

परन्तु हम आशावादी हैं हमें विश्वस है कि प्रत्येक अंधेरी रात के बाद सवेरा अवश्य होता है, सूर्य की एक किरण अंधेरे की चट्टानों को तोड़ देती है। परन्तु यह आशावादिता हमारे वर्तमान के कार्यों, देश को दिशा देने वाले नियंताओं पर निर्भर करती है। स्वतंत्रता की सुरक्षा के क्या उपाय होने चाहिये इन पर तनिक विचार कर लिया जाये।

1. हम वेद को ईश्वर की वाणी मानते है तथा वेद मार्ग पर चलने में ही कल्याण समझते हैं। ऋग्वेद के दशम् मंडल के मंत्र में स्पष्ट आदेश है-

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधा पुरुत्र भूरस्थात्रं भूर्यावेशयन्तीम्।

अर्थात् मैं राष्ट्रशक्ति यज्ञकर्ता ऋषियों की ऋतंभरा प्रतिभा की खोज हूँ, जो यज्ञों के अदृष्ट फल को जन जन तक पहुंचाने वाली है।

-महाभारत के भीष्मपर्व में भारत वर्ष का विस्तृत वर्णन है।

-भूमि सूक्त में स्वतंत्रता रक्षा की कामना और उसके सामर्थ्य की इच्छा शक्ति का वर्णन है।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण में भी यही लिखा है कि इस देश भारत भूमि में जन्म बड़ी कठिनाई से मिलता है। हमें इसकी रक्षा करनी चाहिये।

इससे प्रेरणा लेकर हम अपनी संस्कृति से जुड़े रहें और स्वतंत्रता रक्षा के निमित्त कार्य करें।

2. कोई भी पेड़ कितना भी बड़ा और पुराना क्यों न हो पर जब अपनी जड़ों से कट जाता है तो सूखकर ठूँठ बनकर गिर पड़ता है। अतएव स्वतंत्रता रक्षा के लिये हमें अपनी संस्कृति पुरातन सनातन वैदिक-संस्कृति से जुड़े रहना होगा।

3. सामाजिक कुरीतियाँ विषमताएं दीमक की भाँति किसी भी वृक्ष को अंदर से खोखला कर देती हैं और कमज़ोर वृक्ष अंततः गिर पड़ता है अतएव स्वतंत्रता की रक्षा के लिये इन दीमक रूपी सामाजिक कुरीतियों जाति प्रथा, वर्ग भेद, गरीबों अमीरों के बीच बढ़ती खाई, नारी उत्पीड़न, दहेज प्रथा, सतीप्रथा, बाल विवाह, कन्याभ्रूण हत्या, अंधविश्वासों जैसी बुराइयों के विरुद्ध लड़ना होगा ताकि हम अंदर से सुदृढ़ हो सकें।

4. विकास के नाम पर चल रहे पाश्चात्य अंधानुकरण को रोकना होगा। विकास के नाम पर चकाचौंध से सम्मोहित एक मृगतृष्णा के पीछे लग रही इस व्यर्थ दौड़ का अंत तो विनाश है। अतएव विकास के सही अर्थ आत्मिक, शारीरिक, सामाजिक और सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति को खोजना होगा। अन्यथा यह पाश्चात्य अंधानुकरण हमें भेड़ चाल की भांति शिखर से इतिहास की गहरी खाइयों में बड़ी तेजी से धकेल देगा और इतिहास की इन गहरी खाइयों में हमारी संस्कृति समाप्त हो जायेगी। अतएव स्वतंत्रता की रक्षा के लिये पाश्चात्य अंधानुकरण को रोकना नितांत आवश्यक है।

5. विकास के नाम पर कल्पना की उड़ान की ऊँचाई उतनी हो कि हमारे पाँव यथार्थ की कठोर भूमि पर टिके रहें अन्यथा अंततः हमारी हालत उस परकटे परिंदे की भांति हो जायेगी जो गिरने पर कभी अपने कटे परों को तो कभी घायल पांवों को देखता है। अर्थात् आत्मिक सामाजिक और शारीरिक उन्नति की ओर ध्यान देना होगा।

6. इतिहास से सीख लेकर वर्तमान में कार्य करें और भविष्य को संवारें। काठ की हाँडी को बार-बार आँच पर न चढ़ायें। एक ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार के नाम पर इस देश में आयी और पूरे देश को गुलाम बना बैठी। पर इतिहास को भूल कर भौतिकतावाद और उपभोक्तावाद की चकाचौंध में हम फिर से इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों को तात्कालिक लाभों के लिये फिर निवेश के नाम पर बुला रहे हैं। स्वतंत्रता की रक्षा के लिये इस पर विचार करना होगा।

7. हम भारतीय हैं अपनी भारतीयता पर हमें गर्व होना चाहिये। स्वदेशी का अधिकतम प्रयोग करें स्वावलंबी बनें और विदेशी वस्तुओं का विशेषरूप से भोगवाद की सामग्री का बहिष्कार करके स्वतंत्रता की रक्षा करें क्योंकि विदेशी वस्तुओं के प्रयोग से हमारा आर्थिक दोहन होता है।

8. ब्रेन-ड्रेन जैसी विकराल रूप लेती समस्या का निदान भी आवश्यक है। हमारे देश की उदीयमान प्रतिभाओं अच्छे डाक्टरों, कुशल इंजीनियरों कम्प्यूटर जानने वालों को चंद डालरों का प्रलोभन देकर विदेशी कंपनियाँ खींच लेती हैं इस प्रकार देश इन प्रतिभाओं से वंचित हो जाता है और विदेशी इनकी प्रतिभाओं का दोहन करते हैं। स्वतंत्रता की रक्षा के लिये इस ब्रेन ट्रेन की प्रवृत्ति पर अंकुश अत्यंत आवश्यक है।

9. पेट के रास्ते दिल पर राज करने के प्रयास को भी रोकना आवश्यक है पिज्जा फास्ट फूड बर्गर कोक संस्कृति को रोकना और देश की युवा पीढ़ी के स्वास्थ्य की रक्षा करना अत्यंत आवश्यक है अन्यथा अफीम की भांति इसकी आदी होकर हमारी युवा पीढ़ी खोखली हो जायेगी और स्वतंत्रता की रक्षा नहीं कर पायेगी।

टी.वी. मीडिया की सहायता से देश के घर घर में फैल रही अपसंस्कृति को रोकना भी स्वतंत्रता की रक्षा के लिये आवश्यक है।

10. अंग्रेजों ने इस देश पर 'फूट डालो राज करो' की नीति का अनुसरण किया, आज भी लोकतंत्र को भीड़तंत्र में बदलकर समाज को क्षेत्र भाषा जाति धर्म आदि के मुद्दों पर तोड़कर राज चलाने की दुष्प्रवृति ने जन्म ले लिया है। स्वतंत्रता की रक्षा के लिये इसे रोकना होगा अन्यथा देश विखंडित हो जायेगा हम आपस में लड़ पड़ेंगे और स्वतंत्रता खतरे में पड़ जायेगी।

11. नेताओं अपराधियों और अधिकारियों का एक नापाक गठजोड़ जो अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए किसी भी हद तक गिर सकता है इस माफिया त्रिकोण को अभिमन्यु की भांति अंदर घुस कर तोड़ना होगा अन्यथा यह देश को बेच खायेंगे। राजनैतिक अस्थिरता के बीच नौकरशाही बेलगाम घोड़ों की भाँति हो चुकी है। बेलगाम घोड़े व्यवस्था के रथ को अपने तुच्छ स्वार्थ के लिये विनाश की राह पर सरपट दौड़ा देंगे। अतएव स्वतंत्रता की रक्षा के लिये बेलगाम नौकरशाही को रोकना अत्यंत आवश्यक है।

12. समाज में भ्रष्टाचार को रोकना होगा हमारे देश में बढ़ता काला धन और काले धन की समानान्तर अर्थव्यवस्था कभी भी देश की स्वतंत्रता के लिये खतरनाक सिद्ध हो

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पृष्ठ 2 का शेष-वेद वाणी द्वारा ही ज्ञान का प्रकाश हुआ है

(असमाः बभूवुः) समान नहीं है। (आदघ्नासः) कुछ के घुटनों तक जल है, (उप क्षासः) कुछ के कोखों तक जल है, (उत्वे ह्रदाइव स्नात्वा) दूसरों ने तालाब में स्नान किया है (उत्व ददृश्रे) दूसरों ने वाणी को देखा है, साक्षात् किया है।

भावार्थ-आंखों वाले, कानों वाले, समान इन्द्रियों वाले भी मन की गतियों में, विचार शक्ति में समान नहीं होते हैं।

अब एक ऋचा पर और विचार कर विषय को विराम देते हैं।

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुरुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।।

ब्रह्मा त्वो वदति जात विद्यां यज्ञस्य मात्रां विमिमीत उत्वः।।

ऋ. 10.71.11

अर्थ-(त्वः) कोई विद्वान् (ऋचाम्) वेद मंत्रों के (पोषम् पुरुष्वात्) पोषण को पुष्ट करता हुआ (आस्ते) रहता है। (त्वः) कोई (ब्रह्मा) यज्ञ का ब्रह्मा, अथर्ववेद का ज्ञाता, जात विद्यांऽशिल्प विद्या को (वदति) कहता है (उत्वः) और कोई (यज्ञस्य मात्रां) यज्ञ की विधि को (विमिमीत) विशेष रीति से बताता है।

यजुर्वेद

भावार्थ-मंत्र में चारों वेदों के विभाग को बताया गया है। होता, उद्गाता, अध्वर्यु और ब्रह्मा के कार्यों का संकेत भी इस ऋचा में है।

अग्ने मृड महाँ अस्यय आ देवयुं जनम्।
इयेथ बर्हिरासदम्।।(७)

-पू० १.१.३.३

भावार्थ-हे पूजनीय परमात्मा! आप अग्नि स्वरूप हैं, ज्ञानस्वरूप हैं और सुख के भण्डार हैं, सुख के सागर हैं, कृपा करके हमें सुखी कर दीजिए, आप महान हैं, ज्ञान की दृष्टि से बल की दृष्टि से, सब प्रकार की ऐश्वर्य की दृष्टि से आपसे बड़ा महान कोई भी नहीं है, आप के महान गुणों को हमें भी धारण करा दीजिए।

हे प्रभु! जो व्यक्ति ज्ञान यह के माध्यम से आपकी पूजा करता है, आप की आज्ञा का पालन करता है उस भक्त को आप प्राप्त होते हैं, हे परमात्मा! आप हमारे हृदयरूपी यज्ञस्थल में आकर विराजमान होइए। जो भी व्यक्ति इस प्रकार आपकी भक्ति करता है उसको आप परमात्मा सुखी कर देते हैं। इससे विपरीत जो व्यक्ति आप ईश्वर में श्रद्धा नहीं रखता, वह नास्तिक होता है ऐसे नास्तिक व्यक्ति को आप परमात्मा कभी भी प्राप्त नहीं हो सकते हैं। नास्तिक व्यक्ति बहार से सुखी दिख सकता है किन्तु अन्दर से भयभीत, दुखी रहता है। अतः हम आज से ही आप ईश्वर की भक्ति उपासना करने में यज्ञ हवन, स्वाध्याय, सत्संग करने में संलग्न हो जावें। जिससे हमारा जीवन सुखमय हो, हमारा कल्याण हो तथा औरों का भी हम कल्याण कर सकें।

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति।।

-पू० १.१.३.७

भावार्थ-हे प्रकाश स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ जगदीश्वर! आप ज्ञान, बल, आनन्द, पराक्रम, ओज, तेज, धैर्य, शौर्य, सहनशक्ति आदि समस्त उत्तम उत्तम गुणों में सर्वश्रेष्ठ हैं, सर्वोच्च हैं, आपके समान ज्ञान, बल आनन्द आदि सर्वोत्तम गुणों वाला और कोई भी नहीं है। आप ही समस्त प्रकाशक पदार्थों के भी प्रकाशक हैं, सर्वोपरि हैं। हे प्रभु! जैसे बैल की ककुत् टाट या कोहान उंची होती है वैसे आपका ज्ञान सबसे उच्च है, श्रेष्ठ है। जहां कहीं भी ज्ञान की पराकाष्ठा है, अनंतता है, वह आपकी है।

हे जगत्पति, जगदाधार, विश्वात्मा, परमब्रह्म परमेश्वर! आप ही पृथ्वी आदि सब लोक लोकांतरों के पालक हैं, संचालक हैं, तथा सभी जीवों के कर्मों को यतावत जानने वाले और कर्मानुसार सभी को न्यायपूर्वक फल प्रदान करने वाले हैं। ऐसे आप सर्वशक्तिमान सर्वाधार ईश्वर को हम सदैव अपने चारों ओर अनुभव करते हुए सर्वदा सत्कर्म ही करें व पाप कर्मों से सर्वथा पृथक रहें ऐसी हम पर कृपा करिये।

पृष्ठ 5 का शेष-स्वाधीनता की सुरक्षा के उपाय

सकती है। देश के पूर्व प्रधानमंत्री की स्वीकारोक्ति थी कि एक रुपये के विकास कार्य में मात्र दस पैसे ही नीचे तक पहुंचते हैं। इतने व्यापक स्तर का गोलमाल भी देश की व्यवस्था की सेहत के लिये चिंतनीय है।

13. आतंकवाद की समस्या आज देश की स्वतंत्रता के समक्ष एक गंभीर चुनौती बन कर खड़ी है। क्षेत्रवाद, अलगाववाद, भाषावाद, पानी के मुद्दों पर बढ़ती महत्वाकांक्षायें आज देश की अखंडता के लिये खतरा बन चुकी हैं। इसके लिये आतंकवाद के मूल का निदान करना होगा तथा इन समस्याओं का निदान कर आम आदमी का दिल जीतना होगा। विदेशों से पोषित आतंकवाद को कड़े कानूनों से सख्ती के साथ निपटना होगा। अन्यथा आज का यह आतंकवाद जो विश्व व्यापी समस्या बनता जा रहा है देश की स्वतंत्रता के लिए गंभीर चुनौती साबित होगा।

पृष्ठ 8 का शेष-आर्य समाज शास्त्री नगर...

वस्तुतः तो प्रत्येक श्रेष्ठतम कल्याण कार्य यज्ञ है। यज्ञ शब्द का मौलिक अर्थ यजधातु में है। यज-देवपूजा संगतिकरणार्थ दानेषु अर्थात् जिसमें प्राणीहित, लोकहित एवं सबके प्रति सद्भावना तथा सहृदयता के कार्य सम्पन्न होते हैं वह कर्म श्रेष्ठतम कर्म है, यज्ञ का यही स्वरूप है। यज्ञ का ही स्वरूप यह संसार है। सृष्टि यज्ञ प्राकृतिक देव शक्तियां करती हैं। इसके पश्चात पंडित रमेश शास्त्री जी एवं विदुषी सीमा अनमोल जी के मनोहर प्रभु भक्ति भजनों व स्वर गायन से सभी श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। तत्पश्चात आचार्य सुशील शर्मा जी ने अपने प्रवचन के माध्यम से जीवन को प्रभु के मार्ग पर चल कर सफल बनाने का उद्बोधन दिया। सारे कार्यक्रम का मंच संचालन श्री रजनीश आर्य जी ने किया। आर्य समाज के प्रधान भारत भूषण नंदा ने सभी आए हुये आर्यजनों का धन्यवाद किया। कार्यक्रम में श्री कुन्दन लाल अग्रवाल, श्री शिवदयाल माली, श्री कमल किशोर जी, श्री मनोहर लाल डोगरा, श्री अरिवन्द नंदा, श्री वेद प्रकाश भारद्वाज, श्री दास महेश जयरथ, श्री अजय हांडा, सुमेधा आर्य उपस्थित रहे। कार्यक्रम के पश्चात ऋषि लंगर का आयोजन किया गया।

-भारत भूषण नंदा प्रधान

तं त्वा गोपवनो गिरा जनिष्ठदग्ने अङ्गिरः।
स पावक श्रुधी हवम्।।

-पू० १.१.३.९

भावार्थ-हे अग्ने! हे ज्ञान स्वरूप परमात्मा! वाणी की शुद्धि चाहने वाला जो मनुष्य आपको पुकारता है, आपकी स्तुति से उसकी वाणी शुद्ध हो जाती है ऐसा भक्त पुरुष आपको अपनी श्रेष्ठ वाणी से प्रकट करता है तथा आपके गुणों का विस्तार कर रहा है। हे प्राणों से भी प्रिय, परम पवित्र, व अपने भक्तों को पवित्र करने वाले पतित पावन प्रभु! हमारी पुकार को, प्रार्थना को सुनिये तथा हम भक्तों की मनोकामना को पूर्ण भी करिए। जो व्यक्ति वाणी की शुद्धि चाहता है वह ईश्वर की स्तुति करे, जप करे, योगदर्शन में ऐसा ही कहा है, तज्जपः तदर्थ भावनम् अर्थात् ईश्वर के ओ३म नाम का अर्थ सहित जाप करे एवं व्यवहार में ईश्वर की आज्ञा का पालन करे, ऐसे ही न्यायदर्शन में वाणी को शुद्ध करने के लिए चार उपाय बतलाये गये हैं जैसे हमेशा वाणी से सत्य बोलें, मधुर बोलें, हितकारी बोलें, सार्थक बोलें, इससे विपरीत असत्य बोलना, कठोर बोलना अहितकारी बोलने से, कठोर बोलने से, निरर्थक बोलने से वाणी अपवित्र हो जाती है तथा सत्य, मधुर, हितकारी और सार्थक बोलने से वाणी पवित्र हो जाती है। इसलिए जिससे वाणी अपवित्र होती है ऐसे वचन का हम त्याग करें व जिससे वाणी पवित्र होती है ऐसे वचन को हम धारण करें।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा। **-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा**

पृष्ठ 4 का शेष-ज्ञानातिरिक्तवस्तुसदसद्विवेचनम्

आत्मा इससे विपरीत है। जैसा कि पतञ्जलि मुनि लिखते हैं-'**सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात्**' क्योंकि आत्मा अपरिणामी होने से सदा चित्त की वृत्तियों का साक्षी है, कभी ऐसा नहीं होता कि चित्त का परिणाम (चित्त की वृत्ति) किसी विषय का हो और आत्मा न जाने। इसी से आत्मा अपरिणामी सिद्ध होता है। यहाँ कोई शङ्का कर सकता है कि-

प्रश्न-आत्मा के मानने की क्या आवश्यकता है, चित्त ही को सर्व विषय ज्ञाता माना जावे और अपने आपका भी ज्ञाता हो, जैसे अग्नि अन्य पदार्थों का भी प्रकाशक है और अपने आपका का भी प्रकाशक है, इसी प्रकार चित्त मात्र से कार्य चल सकता है, आत्मा को पृथक क्यों माना जावे?

उत्तर इस पर पतञ्जलि मुनि कहते हैं-'**न तत् स्वाभासं दृश्यत्वात्**' जैसे इन्द्रियों का ज्ञान इन्द्रियों को नहीं होता, ऐसे ही रूपादि विषयों का ज्ञान रूपादियों को नहीं होता, पृथिवी पर्वतादि का ज्ञाता इनसे पृथक् होता है। तब चित्त या ज्ञान स्वयं ज्ञाता नहीं हो सकते और अग्नि का जो दृष्टान्त दिया, वह भी ठीक नहीं; क्योंकि अग्नि अपने अप्रकाशित स्वरूप को प्रकाशित नहीं करती। क्योंकि प्रकाश वहीं पर होता है जहाँ पर प्रकाशक और प्रकाश्य दोनों का संयोग हो। संयोग दो या दो से अधिक होने पर होता है। अपने आप में संयोग नहीं होता। यदि कहो कि स्वाभास का यह अर्थ है कि चित्त या वृत्ति किसी दूसरे से ग्रहण नहीं की जाती-जैसे आकाश अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है, दूससे में स्थित नहीं-इसी तरह चित्त भी स्वप्रकाशस्वरूप है, तो यह भी ठीक नहीं; क्योंकि जब कोई प्राणी यह अनुभव करता है कि-मैं डर गया-मैं क्रोध में आ गया-मैं किसी राग में फंस गया और फिर डर को, क्रोध को और राग को दूर करना चाहता है तो इसका यह अर्थ हुआ कि अपने आपको ही नष्ट करना चाहता है; क्योंकि उनके यहाँ चित्त से अतिरिक्त दूसरा है ही नहीं और जो स्थिर आत्मा मानता है वह अपने चित्त में जो क्रोधादि का ज्ञाता है, उसको दूर करना चाहता है। यह बात संगत हो जाती है। विज्ञानवादी को अन्य भी दोष है। वह यह कि विद्यमान वस्तु का प्रत्यक्ष होता है, जो उत्पद्यमान और विनश्यदवस्थ विज्ञान उत्पन्न हो रहा है वह अपने को ग्रहण नहीं कर सकता; क्योंकि क्षण मात्र में वह नष्ट हो जाता है। हाँ यदि वह कहो कि पूर्वचित्त को उत्पन्न हुए बाद के चित्त ने ग्रहण किया तो भी ठीक नहीं इसमें दो दोष आते हैं, एक अनवस्था दूसरा स्मृतिसंकर। स्थिर आत्मा के होने से तो इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से ज्ञान हो जाता है। क्षणिक विज्ञानवादी के मत में पूर्व विज्ञान को उत्तर विज्ञान से जाना, उसको भी फिर उत्तर विज्ञान ने। इसी प्रकार की परम्परा प्राप्त होती है। ज्ञान परिनिष्ठित ज्ञान नहीं होता। आत्मस्थिरता पक्ष में अर्थज्ञान से संस्कार और संस्कार से अर्थ स्मरण होता है किन्तु क्षणिकवादी के मत में परिनिष्ठित ज्ञान नहीं होने से ज्ञानधारा के होने से न संस्कार न स्मृति सम्भव है। और अम्युगम से स्मृति मानें तो भी अनेक ज्ञान होने से अनेक स्मृति प्राप्त होंगी। निश्चय रूप से एक स्मृति का होना भी असम्भव होगा। आत्मपक्ष में यह शङ्का हो सकती है कि चित्त का जो अर्थाकार में परिणाम होता है, वही ज्ञान कहलाता है; किन्तु आत्मा तो अपरिणामी है, उसको अर्थज्ञान कैसे होगा? यद्यपि आत्मा अपरिणामी है, अपने रूप से चलायमान भी नहीं है, फिर भी विविध प्रकार के जो बाह्य पदार्थ उनके रूप में परिणत होने वाला जो चित्त उसका सदा ज्ञाता, द्रष्टा है। इस बात को योगसूत्र और भाष्यकर्त्ता व्यास जी बड़े अच्छे प्रकार से कहते हैं, जैसा कि '**द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम्**' जैसे चित्त का अर्थाकार परिणाम होता है ऐसे ही द्रष्टा जो चेतन तदाकार भी चित्त का परिणाम होता है, इसी को चित्त का उपराग कहते हैं। इसलिये चित्त सर्वार्थ है। व्यास जी इस प्रकार व्याख्या करते हैं।

'**मनो हि मन्तव्येनार्थेनोपरक्तं ततः स्वं च विषयत्वात् विषयिणा पुरुषेण आत्मीयया वृत्त्याभिसम्बद्धं तदेतच्चित्तमेव द्रष्टृदृश्योपरक्तं विषयविषयि-निर्भासं चेतनाचेतनस्वरूपापन्नं विषयात्मकमप्यविषयात्मकमिवाचेतनं चेतनमिव स्फटिकमणिकल्पं सर्वार्थमिति उच्यते**'।

अर्थात् यहाँ चित्त को ही मन कहा है, मन ही जानने योग्य वस्तु के आकार को ग्रहण कर स्वयं पुरुष के द्वारा (विषय) ज्ञात होने से जानने वाले पुरुष के साथ आत्म सम्बन्धी वृत्ति वाला होकर, सम्बन्धित होने पर यह जो मन ही पुरुष और बाह्यार्थ के स्वरूप को धारण कर... अर्थ और पुरुष के रूप की तरह प्रकाशित चेतन और अचेतन के स्वरूप को प्राप्त हुआ, ज्ञेय होने पर भी जानने वाले की तरह प्राप्त हुआ। सफटिक मणि की तरह से-जैसे स्फटिक मणि के पास दो तीन प्रकार की वस्तुओं के रखने से वह मणि दो तीन प्रकार की प्रतीत होती है, ऐसे ही यह मन भी सर्व प्रकार के स्वरूप को धारण करता है। चित्त की इसी प्रकार की अवस्था को न समझने से कुछ लोग चित्त को ही चेतन मानने लगे, आत्मा की सत्ता को भूल गये। जैसे अग्नि के होने से लोहा गरम हो जाता है, किन्तु लोहा आग ही नहीं हो जाता। कुछ लोग मानने लगे कि बाह्य जगत् या जगत् के पदार्थ कुछ नहीं, चित्तमात्र ही हैं-क्षणिक विज्ञान ही है। इसी को व्यास जी इन शब्दों में लिखते हैं-

'**तदनेन चित्तसारूप्येण भ्रान्ताः केचित्तदेव चेतनमित्याहुः, अपरे चित्तमात्रमेवेदं सर्वं, नास्ति खल्वयं गवादिर्घटादिश्च सकारणो लोक इति। अनुकम्पनीयास्ते, कस्मात्? अस्ति हि तेषां भ्रान्तिबीजम्। सर्वरूपाकारनिर्भासं चित्तमिति**'।

व्यास जी कहते हैं ये लोग दया करने योग्य हैं जो चित्त को ही चेतन मानते हैं, इससे अतिरिक्त आत्मा का निषेध करते हैं, दूसरे वह लोग भी दया के पात्र हैं जो यह कहते हैं कि कारण से उत्पन्न होने वाले जगत् य.। जगत् में गौ अश्वादि या घट पटादि कुछ नहीं हैं। चित्तमात्र ही सब कुछ है। क्यों ये अनुकम्पा के पात्र हैं? इसको बताते हैं।-इनको भ्रान्ति में डालने वाला कारण है-कौन सा कारण है? '**सर्वारूपाकारनिर्भासं चित्तम्**' जैसे अनेक वेष बदलने वाला मनुष्य दूसरों को अन्यथा निश्चय करा देता है। वैसे ही यह चित्त भी सर्व प्रकार के रूपों वाला होकर दीखता है। क्या कभी आप स्वप्न में हाथी को देख रहे होते हैं तो क्या हाथी उस समय होता है। नहीं केवल चित्तवृत्ति ही को हाथी के रूप में आत्मा साक्षात् करता है। ऐसे ही ध्यानावस्थ योगी जब बाह्यवृत्तियों का अवरोध करता है-चित्त स्थिर होता है-उस अवस्था में '**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**' उस समय यह चित्त द्रष्टा आत्मा या परमात्मा के स्वरूप का चेतन प्रतीत होता है जैसा कि कहा भी है '**न पातालं न च विवरं गिरीणां नैवान्धकारं कुक्षयो नोदधीनाम्। गुहा यस्यां निहितं ब्रह्म शाश्वतं बुद्धिवृत्तिमविशिष्टां कवयो वेदयन्ते**'-जिस गुहा में ब्रह्म स्थित है वह गुहा कौन सी है-वह न पाताल है-न पर्वतों वाली गुहा है-न अन्धकार ही गुहा है और न समुद्रों की तह ही गुहा है, फिर वह गुहा कौन है-बुद्धिवृत्तिमविशिष्टां अर्थात् चित्त वृत्ति से भिन्न कोई गुहा नहीं है। इसको क्रान्तदर्शी विद्वान् जानते हैं। जो चेतन और बाह्य अर्थों को चित्त से अतिरिक्त न मानने वाले हैं, उनको भ्रम में क्यों माना जावे? यथार्थ ज्ञानी क्यों न माना जावे, इसको भी दिखाते हैं

''**समाधिप्रज्ञायां प्रज्ञेयोऽर्थः प्रतिबिम्बीभूतस्तस्यालम्बनीभूतत्वादन्यः स चेदर्थश्चित्तमात्रं स्यात्, कथं प्रज्ञयैव प्रज्ञारूपमवधार्य्येत, तस्मात् प्रतिबिम्बीभूतोऽर्थः प्रज्ञायां येनावधार्य्यते स पुरुष इति**'।

चित्त की समाधि अवस्था में प्रतिबिम्बित हुई जो वस्तु अनुभूत होती है। जानने योग्य अर्थ ही प्रतिबिम्बित हुई वृत्ति का आलम्बन है। जो कि अर्थ प्रतिबिम्ब से अन्य है। यदि वह अर्थ चित्तमात्र ही हो तो किस प्रकार अपने रूप को समझें। जैसे आँख अपने आपको नहीं देख सकती, किन्तु दर्पण की आवश्यकता होती है। इसलिये चित्त में प्रतिबिम्बित अर्थ जिसके द्वारा जाना जाता है, वह पुरुष है। उपर्युक्त कथन में चेतन से अतिरिक्त चित्त और बाह्य पदार्थ सिद्ध किये गये हैं। ऐसा ही स्वामी शङ्कराचार्य जी ने भी वेदान्त दर्शन २।२।२८ से २।२।३२ तक बाह्य अर्थों की सत्ता न मानने वालों का खण्डन किया है और यहाँ तक उनको कहा कि ''पहिले पूर्वपक्ष किया-'**ननु नाहमेवं ब्रवीमि न कञ्चिदर्थमुपलभे किन्तूपलब्धिव्यतिरिक्तं नोपलभ इति ब्रवीमि**' मैं ऐसा नहीं कहता कि किसी पदार्थ को नहीं जानता, किन्तु ऐसा कहता हूँ कि ज्ञान से अतिरिक्त अर्थ को नहीं जानता। शङ्कराचार्य जी कहते हैं '**बढ़मेवं ब्रवीषि निरङ्कुशत्वात्ते तुण्डस्य**' हाँ तुम ऐसा कहते हो तुम्हारे मुख के बिना अङ्कुश के होने से। इतना भी अन्यत्र अनेक स्थलों पर ब्रह्मातिरिक्त सब का अभाव प्रतिपादन किया है, अविद्या कल्पित कहा है। यदि इनके अनुसार सब अभाव ही स्वीकार किया जाये तो वेदान्त दर्शन के इस प्रकरण का कोई प्रयोजन ही नहीं सिद्ध होता है। इसलिये ये पक्ष वेदशास्त्र और युक्ति सभी से विरुद्ध होने से तत्त्वज्ञान न होकर मिथ्याज्ञान बढ़ाने वाले हैं। और मिथ्या ज्ञान ही सब दुखों का मूल है।

आर्य गर्ल्ज सी.सै.स्कूल बठिंडा में सोलर पावर प्लांट ग्रिड का उद्घाटन

आर्य गर्ल्ज सीनियर सैकेंडरी स्कूल बठिंडा में सोलर पावर प्लांट ग्रिड लगवाया गया। इस अवसर पर स्कूल प्रबन्ध समिति के सदस्य एवं स्टाफ हवन यज्ञ में आहुतियां प्रदान करते हुये जबकि चित्र दो में स्कूल प्रधान श्री अनिल अग्रवाल जी एवं श्रीमती अरुण अग्रवाल जी सोलर पावर प्लांट का उद्घाटन करते हुये।

आर्य गर्ल्ज सीनियर सैकेंडरी स्कूल बठिंडा में स्कूल प्रधान श्री अनिल अग्रवाल जी एवं श्री अरुण अग्रवाल जी ने अपने पिता स्वर्गीय कुलवन्त राय अग्रवाल जी समाजसेवी एवं माता स्वर्गीय श्रीमती विमला देवी जी की याद में स्कूल में गत दिनों सोलर पावर प्लांट ग्रिड लगवाया। इस अवसर पर आर्य गर्ल्ज सीनियर सैकेंडरी स्कूल बठिंडा के प्रांगण में हवन यज्ञ का आयोजन किया गया जिसमें प्रबन्ध समिति के सदस्यों ने वेद मंत्रों के साथ आहुतियां प्रदान की। यज्ञ के पश्चात प्रधान श्री अनिल अग्रवाल जी ने सोलर पावर प्लांट का विधिवत उद्घाटन किया। उन्होंने अपने सम्बोधन में कहा कि शिक्षा मानव समाज का अभिन्न अंग होने के कारण मानव के निर्माण का प्रमुख घटक है। मनुष्य की जीवन यात्रा का आरम्भ शिक्षण से होता है। विद्यार्जन की साधना ही व्यक्ति के भावी जीवन की सफलता का मूलमन्त्र है। समुचित विकसित जीवन के लिए शिक्षा की महत्ता को सभी ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। उनके द्वारा प्रतिपादित शिक्षा का उद्देश्य केवल ऐसे लोगों को शिक्षित करना है जो पढ़ लिख कर अपनी रोजी-रोटी कमा सके। महर्षि दयानन्द की मान्यता के अनुसार शिक्षा परिष्कार तथा सुन्दर विचारों के आधान का प्रथम साधन है। इसी विचार से उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के दूसरे एवं तीसरे समुल्लास प्रमुखत: शिक्षा के सम्बन्ध में ही लिखे। इन दोनों समुल्लासों में शिक्षा के प्राथमिक व मूलभूत सिद्धान्तों का वर्णन करते हुए बाल शिक्षा तथा पढ़ने-पढ़ाने की विधि के अन्तर्गत विद्यालयों के लिए पाठ्यक्रम की भी समायोजना की है। शिक्षा मानव निर्माण की प्रमुख सोपान है। इसके पश्चात स्कूल के प्रबन्धक श्री सुरेन्द्र गर्ग जी द्वारा प्रधान श्री अनिल अग्रवाल जी को फूलों का गुलदस्ता एवं सिरोपा देकर सम्मानित किया गया। प्रबन्धक सुरेन्द्र गर्ग जी ने अग्रवाल परिवार का सोलर पावर प्लांट लगवाने पर आभार व्यक्त किया एवं समय समय पर स्कूल की सहायता करने की उम्मीद जताई। आर्य गर्ल्ज सीनियर सैकेंडरी स्कूल की प्रिंसीपल श्रीमती सुषमा मेहता जी ने आए हुये सभी महानुभावों का धन्यवाद किया। उन्होंने स्कूल प्रबन्ध समिति एवं प्रधान जी का धन्यवाद किया और कहा कि वह इसी तरह स्कूल की बेहतरी के लिये अपना योगदान देते रहेंगे। 10वीं एवं 12वीं कक्षा के शत प्रतिशत नतीजों पर स्कूल के स्टाफ एवं बच्चों को बधाई दी। 12वीं कक्षा की आर्ट्स में प्रथम स्थान पर सिमरन पुत्री राजू 84 प्रतिशत, काजल पुत्री बलवीर सिंह 83 प्रतिशत, अंजलि पुत्री जयंती लाल 81 प्रतिशत, कीर्ति शर्मा पुत्री अश्विनी शर्मा 81 प्रतिशत, 12वीं कक्षा कामर्स में प्रथम स्थान मुस्कान कुमारी पुत्री कैलाश झा, द्वितीय स्थान अंजलि पुत्री पप्पू राम सैनी, तीसरे स्थान पर तमन्ना पुत्री गुरतेज सिंह रही। कक्षा दसवीं में प्रथम हिमांशी पुत्री साहिब सिंह ने 91 प्रतिशत अंक प्राप्त किये। द्वितीय पबनीत पुत्री श्रीपाल 83 प्रतिशत, तृतीय दीक्षा पुत्री हरदीप कुमार ने 80 प्रतिशत अंक प्राप्त किये। प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान पर आने वाले विद्यार्थियों को सम्मानित किया गया। इस अवसर पर स्कूल उप प्रधान श्री राजेन्द्र कुमार, श्री प्रदीप कुमार, सदस्य श्री प्रेमसुख दास गोयल, श्री मनोहर लाल बंसल, श्री विनोद कुमार, श्री संजीव कुमार, समूह स्टाफ एवं बच्चे मौजूद रहे। मंच का संचालन श्रीमती चन्द्रकांता जी ने किया। बच्चों को लड्डू बांटे गये।

-प्रिंसीपल सुषमा मेहता

आर्य समाज शास्त्री नगर जालन्धर में विशेष कार्यक्रम का आयोजन

आर्य समाज शास्त्री नगर जालन्धर में रविवार को विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम आर्य समाज में नई यज्ञशाला का उद्घाटन किया गया। इस उपलक्ष्य में नवनिर्मित भवन में यज्ञ सत्संग का आयोजन किया गया। हवन यज्ञ में आर्य समाज के सदस्यों ने आहुतियां प्रदान की। यज्ञ के ब्रह्मा ने सभी सदस्यों को अपना आशीर्वचन दिया। उन्होंने अपने सम्बोधन में आर्य समाज के सदस्यों को यज्ञ के सम्बन्ध में विस्तार से बताया। उन्होंने कहा कि यज्ञ शब्द अनन्तता का सूचक है। स्वयं जीवन भी एक यज्ञ है, इस जीवन यज्ञ को सुनियमित बनाने के लिए ब्रह्मयज्ञ एवं देवयज्ञ दोनों ही अपेक्षित हैं। ब्रह्मयज्ञ चिन्तन में सम्बद्ध हैं। आत्मा को बलवान बनाने के लिए, इन्द्रियों को संयमित एवं सशक्त करना उतना ही महत्वपूर्ण है

आर्य समाज शास्त्री नगर जालन्धर के सदस्य हवन यज्ञ करते हुये।

जितना कि सारथि के साथ रथ को सुचारू रूपेण चलाने योग्य। इन्द्रियों को बलवान, यशस्वी एवं पवित्र बनाने के लिए ब्रह्म यज्ञ किया जाता है। मुण्डकोपनिषद में कहा गया है कि नायमात्मा बलहीनेन लभ्य: अर्थात् निर्बलेन्द्रिय ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते। ईश्वर के गुण स्वभाव को अपने अन्दर लाने एवं उन गुणों के अर्थ की भावना मन में धारण करने से मनुष्य के अन्त:करण में उन गुणों का प्रभाव पड़ता है और क्रमश: वे मानव जीवन से अभिन्न हो जाते हैं। गुणों के समावेश से ईश्वर का सामीप्य ही ब्रह्म यज्ञ का लक्ष्य है। सन्ध्या, स्वाध्याय के अनन्तर देवयज्ञ का विधान है जो सैद्धान्तिक एवं धार्मिक होने के साथ-साथ सामाजिक, सुखशान्ति एवं नियमन का भी प्रेरक है। आध्यात्मिकता के साथ-साथ वैज्ञानिकता से परिपूर्ण इस यज्ञ के विषय में आर्ष ग्रन्थों में कहा गया है कि- अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकाम: अर्थात् स्वर्ग की इच्छा रखने वाला पुरूष अग्निहोत्र करे। इस भौतिक यज्ञ से जलवायु शुद्ध होती है एवं रोगकारक कीटाणुओं का नाश होता है। प्राणशक्ति के संवर्धन के साथ परिमित वृष्टि करने में भी भौतिक यज्ञ अत्यन्त सहायक है। यज्ञ क्या है? इसका स्वरूप, उपयोगिता तथा सीमा क्या है? क्या यज्ञ पात्र, यज्ञशाला, हवन सामग्री ही इसके साधन हैं? (शेष पृष्ठ 6 पर)

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com,